अध्याय–1

औपनिवेशिक भारत – सतत शोषण का काल

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत पर कई बार विदेशी आक्रमण हुए और उन आक्रमणों के फलस्वरूप भारत में राजनीतिक परिवर्तन तो हुए परन्तु भारत के आर्थिक ढाँचे पर आक्रमणों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। आत्मनिर्भर भारतीय गांव, ग्रामीण उद्योग एवं परस्पर अन्तरनिर्भर ग्रामीण अर्थव्यवस्था यह सब कई शताब्दियों से यहाँ चल रहे थे। भारत की आत्मनिर्भर समाज व्यवस्था का वर्णन चार्ल्स मेटकाफ इन शब्दों में करते हैं ''ग्राम व्यवस्था छोटे–छोटे गणतंत्र हैं। अपनी जरूरत की सारी चीजें इन्हें अपने यहाँ प्राप्त हैं और विदेशी संबधों से मुक्त है। जहां कुछ भी स्थायी नहीं है वहाँ ये अकेले जैसे अमर हैं। राजकुल लुढ़कते रहे, क्रान्तियां होती रहीं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख, क्रमशः मालिक बनते रहे, लेकिन ग्राम–समाज यथापूर्वक बने रहे।''

भारत पर अंग्रेजों की विजय इन आक्रमणों से भिन्न थी। यह विजय उस राष्ट्र द्वारा की गयी थी जिसने अपने देश में जागीरदारी प्रथा को समाप्त किया था तथा एक आधुनिक मध्यम वर्ग समाज का निर्माण किया था। पूँजीवादी व्यवस्था की उन्नति और फैलाव के द्वारा ब्रिटेन ने अपने आप को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में संगठित कर लिया था। परन्तु भारतीय समाज के पुरातन आर्थिक आधार को नष्ट करके उसकी जगह पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना किए बिना ब्रिटेन अपनी पूँजीवादी आर्थिक आवश्यकताओं के लिए औपनिवेशिक भारत का समुचित उपयोग नहीं कर सकता था। भारत पर अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार की दिशा में उठाया गया प्रत्येक कदम पुरानी अर्थव्यवस्था के लिए विघटन और नए उन आर्थिक रूपों के उदय की दिशा में ही अगला कदम था। ये सभी कदम भारतीयों के लाभ के लिए नहीं वरन ब्रिटिश लाभ के लिए प्रतिपादित किये गये थे।

वस्तुतः 16 वीं शताब्दी में भारत धन, वैभव एवं समृद्धि से सम्पन्न था। भारत की इस समृद्धि से प्रभावित होकर यूरोप के विभिन्न देश भारत के साथ व्यापार करने के लिए उत्सुक थे। सन 1600 ई0 को ब्रिटिश महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने अंग्रेज व्यापारियों की ईस्ट इंडिया कम्पनी को भारत से व्यापार करने के लिए अधिकार पत्र दिया। 1600 ई0 में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी भारत आई। सन 1664 ई0 में फ्रांस के सम्राट ने भारत से व्यापार करने लिए फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना की। इस प्रकार अब पुर्तगाली, डच, ब्रिटिश और फ्रांसीसी कम्पनियाँ पूर्वी देशों और विशेष रूप से भारत में अपना व्यापार बढ़ाने लगीं। कुछ समय तक तो इन व्यापारी कम्पनियों का उद्देश्य भारत से व्यापार करना ही रहा, परन्तु उन्होंने भारत की राजनीतिक फूट और अस्थिरता का लाभ उठाकर अपना राजनीतिक प्रभाव बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। सन 1757 ई0 के प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया। सन 1764 ई0 के बक्सर के युद्ध में ईस्ट इंडिया कम्पनी की सेनाओं ने मुगल सम्राट शाह आलम, बंगाल के नवाब मीर

कासिम तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला की संयुक्त सेनाओं को पराजित करके ईस्ट इंडिया कम्पनी की राजनीतिक शक्ति को स्थापित कर दिया। गर्वनर जनरल लॉर्ड डलहौजी के कार्यकाल तक कम्पनी की प्रभुसत्ता सम्पूर्ण भारत में स्थापित हो चुकी थी और अब मुगल बादशाह की सत्ता केवल नाम मात्र की रह गई थी। तत्पश्चात आगामी वर्षों में अंग्रेजों ने भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार किया।

19 वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक अंग्रेजों ने इस देश के व्यापार को अपने कब्जे में ले लिया। इस अवधि में वे भारत से माल ले जाते और विदेशों में बेच देते। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी, किसान एवं व्यापारियों से बलपूर्वक उनका माल उठा ले जाते थे। वे लागत मूल्य का केवल एक चौथाई मूल्य चुकाते थे जबकि अपने या अपने अधिकार में लिये माल को कई गुना कीमत में बेचते थे। अंग्रेज मनमाने ढंग से स्वयं यह निर्धारित करते थे कि प्रत्येक कारीगर किस प्रकार का माल तैयार करेगा और कितनी कीमत पर बेचेगा। यदि कारीगर कम दाम लेने को तैयार नहीं होता था, तो उसे बांध कर और कोड़े मारकर भगा दिया जाता था। यह व्यापारिक पूँजी का काल था।

इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप भारत को ब्रिटिश कारखानों के लिए कच्चे माल का निर्यातक देश बना दिया गया एवं वहाँ के कारखानों में निर्मित माल को भारत की मंडियों में खपाया जाने लगा। औद्योगिक पूँजी के इस दौर में भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में भारी चुंगी वसूली जाती थी जबकि ब्रिटिश माल जब भारत आता तो उस पर कोई चुँगी नहीं ली जाती थी। परिणामस्वरूप भारतीय उद्योग–धंधे एक योजना के तहत नष्ट कर दिये गये। अब भारत ब्रिटिश माल पर निर्भर हो गया। लोहा गलाने के देशी उद्योग नष्ट कर दिए गए तथा उनके स्थान पर सस्ता आयातित लोहा व इस्पात बाजार में आने लगा। भारत को इंग्लैण्ड का एक उपनिवेश बना दिया गया।

भारत का आर्थिक शोषण जितना अधिक ब्रिटिश शासन काल में हुआ उतना मध्य काल में नहीं हुआ। आर्थिक दृष्टि से दोनों शासनकालों में कुछ भिन्नताएँ थीं। अधिकांश मध्यकालीन शासकों का जन्म भारत में हुआ और वे यहाँ के निवासी थे लेकिन ब्रिटिश शासक विदेशी थे और विदेशी ही बने रहे। मध्यकालीन शासकों द्वारा अर्जित धन देश में ही निवेश किया गया लेकिन अंग्रेजों ने अपने अर्जित धन को अपने देश इंग्लैण्ड में निवेश किया। आर.सी. दत्त ने अपनी पुस्तक भारत का आर्थिक इतिहास में धन निकास के बारे में उल्लेख किया है कि राजा द्वारा अपनी जनता से अधिक कर ग्रहण करना .सूरज द्वारा पृथ्वी से उस पानी प्राप्त करने के समान होता है जो वर्षा के रूप में पुनः भूमि को देता है। परन्तु यहाँ तो सूरज पानी भारत से ग्रहण करता है तथा वर्षा केवल इंग्लैण्ड में करता है। भारत जो मध्यकाल में एक समृद्ध राष्ट्र था उसे ब्रिटिश युग में एक निर्धन राष्ट्र बना दिया गया। यह सत्य है कि मध्य काल में कुछ विदेशी आक्रमणकारियों ने जैसे महमूद गजनवी, तैमूर और नादिरशाह आदि भारत से धन सम्पदा लूटकर ले गये परन्तु देशवासियों ने उनके जाने के बाद अपने परिश्रम और लगन से देश की आर्थिक स्थिति को ठीक कर लिया था। लेकिन ब्रिटिश शासकों ने ऐसी आर्थिक नीतियाँ अपनायी जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था दिनों–दिन जर्जर होती चली गयी।

प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध भारत को अंग्रेजों ने अपनी औद्योगिक विकास की पूर्ति के लिए हर प्रकार से लूटा। बंगाल में दीवानी प्राप्त करने से पूर्व ईस्ट इंडिया कंपनी का व्यापार एकतरफा था। भारत को बेचने के लिए इंग्लैण्ड के पास कुछ नहीं था जबकि भारतीय वस्तुओं की उसे आवश्यकता थी जिसका व्यापार कंपनी के लिए बहुत ही लाभदायक था। इंग्लैण्ड का ऊनी उद्योग काफी विकसित था पर भारत में ऊनी कपड़े की माँग न थी। इसलिए भारतीय वस्तुओं की आपूर्ति करने के लिए कंपनी को इंग्लैण्ड से सोना–चांदी जैसी बहुमूल्य धातुएँ भारत लानी पड़ती थी। पहले इन धातुओं का इंग्लैण्ड के कुल निर्यात में बहुत अधिक हिस्सा था परन्तु सन 1757 ई. के बाद यह तेजी से घटने लगा क्योंकि कंपनी का बंगाल के राजस्व पर नियंत्रण हो

गया था। यहाँ से भारत की लूट प्रारम्भ हुई जो सन 1947 ई. तक निरन्तर चलती रही।

धन का निकास– सन 1757 ई. के प्लासी के युद्ध के पश्चात भारत से धन निष्कासन की शुरूआत हुई। धन निष्कासन का तात्पर्य ऐसे धन से है जो भारत से इंग्लैण्ड को वेतन, भत्तों, पेंशन, कर्जों पर ब्याज, भारत में लगी ब्रिटिश पूँजी की कमाई के रूप में इंग्लैण्ड भेजा जाता था और इसके बदले में भारत को कोई आर्थिक तथा व्यापारिक प्रतिफल प्राप्त नहीं हो रहा था। ऐसे धन को तत्कालीन भारतीय राष्ट्रीय नेताओं ने धन की निकासी कहा। वाणिज्यवाद विचारधारा के अनुसार आर्थिक निकास उस समय होता है जब किसी देश से प्रतिकूल व्यापार संतुलन के फलस्वरूप सोना और चांदी का निकास किसी दूसरे देश में होता है। प्लासी के युद्ध के बाद भारत की यही स्थिति बन गई। इंग्लैण्ड का भारतीय अर्थव्यवस्था पर एकाधिकार हो गया तथा भारतीय धन का इंग्लैण्ड की ओर अविरल प्रवाह होने लगा।

सर्वप्रथम दादा भाई नौराजी ने अपनी पुस्तक ***पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया में धन निष्कासन के सिद्धान्त*** **(Drain of Wealth)** ***का प्रतिपादन किया।*** दादा भाई नौरोजी ने यह स्पष्ट किया कि तत्कालीन भारतीय गरीबी का प्रमुख कारण धन निष्कासन है क्योंकि जो अधिशेष होता है वह इंग्लैण्ड में भेज दिया जाता है। इसे भारत में निवेश नहीं किया जाता। आय का अतिरिक्त भाग जो अधिक उत्पादन के लिए लगाया जाता है वही नए रोजगार पैदा करता है। परन्तु अतिरिक्त आय की लगातार निकासी के कारण भारत में रोजगार सृजन नहीं हो रहा है। उन्होंने कहा कि भारतीय धन और पूँजी का एक बड़ा भाग या तो देश के बाहर भेज दिया जाता है अथवा उसका एक पक्षीय ढंग से कर्जों के ब्याज, भारत में लगी ब्रिटिश पूँजी की कमाई और यहाँ पर सेवा करने वाले सैनिक या नागरिक अधिकारियों के वेतन और पेंशन के रूप में निर्यात कर दिया जाता है। उन दिनों यह दावा किया जाता था कि ब्रिटिश शासन ने भारत को जान–माल की सुरक्षा का लाभ दिया। इस दावे पर भी आपत्ति करते हुए दादाभाई नौरोजी ने लिखा :–

''कल्पना यह है कि भारत में जान और माल की सुरक्षा है लेकिन वास्तविकता यह है कि ऐसी कोई चीज नहीं है। जान और माल की सुरक्षा एक अर्थ में या एक तरह से यों कहें कि लोग आपस की या देशी निरंकुश राजाओं की हिंसा से सुरक्षित है, लेकिन इंग्लैड की जकड़न कुछ ऐसी है कि संपत्ति की सुरक्षा बिल्कुल नहीं है और परिणामस्वरूप जान की सुरक्षा भी नहीं है। भारत की संपत्ति सुरक्षित नहीं है। उसकी संपति को, आजकल की दर से 3 या 4 करोड़ पौंड सालाना हजम कर रहा है। अतः मैं विनम्रता के साथ यह कहने का साहस करता हूँ कि भारत जान और माल की सुरक्षा का सुख नहीं भोग रहा है। भारत में लाखों लोगों के लिए जीवन का अर्थ है आधा पेट भोजन, भुखमरी, अकाल और बीमारी।''

यही सिद्धान्त आगे चलकर राष्ट्रीय आंदोलन में जन जाग्रति का कारण बना। नौरोजी के अनुसार सन 1867–68 ई. में भारत की प्रतिव्यक्ति आय 20 रू थी जबकि जीवन निर्वाह हेतु न्यूनतम 34 रू वार्षिक की आवश्यकता थी। आश्चर्य की बात यह थी कि सरकारी आँकड़े बताते हैं कि सन 1867–68 ई. में भारत की काराग्रहों में बन्द कैदियों पर किया गया व्यय 21 रू से लेकर 53 रूपये तक था। अतः इससे स्पष्ट होता है कि भारत के आम आदमी के जीवन निर्वाह की स्थिति ब्रिटिश काल में विकट थी।

नौरोजी के अनुसार धन निष्कासन की निम्नलिखित पद्धतियां थीं :–

1. गृह व्यय– गृह व्यय में उन व्ययों को शामिल किया जाता था जो भारत सचिव तथा उससे सम्बद्ध व्यय होते थे। इसमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भागीदारों का लाभांश, विदेशों में लिये गये सार्वजनिक ऋण, सैनिक और असैनिक व्यय तथा इंग्लैण्ड में भण्डार की खरीद सम्मिलित थे। यह व्यय सन 1857 ई0 के उपरान्त बहुत अधिक बढ़ गया था। सन 1897–01 ई0 के बीच 24 प्रतिशत हो गया था तथा सन 1920–21 ई0 में यह और अधिक बढ़कर केन्द्र सरकार के समस्त राजस्व का 40 प्रतिशत हो गया था।

2. विदेशी पूँजी निवेश पर दिया जाने वाला ब्याज– भारतीय राष्ट्रीय आय से यह एक दूसरा महत्त्वपूर्ण धन का निकास था। इसके तहत व्यक्तिगत विदेशी पूँजी निवेश पर ब्याज और लाभ लिया जाता था। सन 1900 ई0 के बाद भारत में ब्रिटिश लोगों ने निजी क्षेत्र में बहुत पूँजी का विनिवेश किया। इस पूँजी पर उन्हे ब्याज तथा लाभ प्राप्त होता है। यह धन निकासी का दूसरा महत्वपूर्ण स्रोत था।

3. विदेशी बैंक, बीमा, एवं नौवहन कम्पनियाँ– विदेशी बैंक, बीमा, नौवहन कम्पनियों ने भारत से करोड़ों रूपयों का लाभ कमाया। इन कम्पनियों ने भारतीय देशी कम्पनियों को देश में नहीं पनपने दिया तथा इन्होंने अपने लाभ को भारत में निवेश न करके अपने देश इंग्लैण्ड में निवेश किया। यह धन निकासी का तीसरा महत्त्वपूर्ण स्रोत था।

भारत से आर्थिक निकासी

वर्ष	वार्षिक औसत (लाख पौंड में)
1835–39	53.47
1840–44	59.30
1845–49	77.60
1850–54	74.58
1855–59	77.30
1860–64	173.00
1865–69	246.00
1870–72	274.00

''हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पन्ज के रूप में काम करती है जो गंगा के किनारों से प्रत्येक अच्छी वस्तु ले लेती है फिर टेम्स के किनारे पर निचोड़ देती है''– जॉन सुलिवन

धन निकासी का आर्थिक प्रभाव– नौरोजी ने धन निकासी को **'अनिष्टों का अनिष्ट'** संज्ञा दी तथा इसे भारत की गरीबी का मुख्य कारण बताया। उन्होंने कहा इस धन के निकास के कारण देश में पूँजी संगठित नहीं हो रही है जिससे देश के औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी हो गई है। भारतीय धन के ब्रिटेन में जाने से इंग्लैण्ड में औद्योगिक विकास के साधन और गति बढ़ गई है। इसका दूसरा घिनौना पक्ष यह भी है कि यही धन पुनः भारत में पूँजी के रूप में निवेश कर दिया जाता था और इस प्रकार भारत का शोषण निरन्तर बढ़ता जा रहा था। नौरोजी ने एक बार कहा था कि भारत का धन बाहर जाता है फिर वही धन भारत में ऋण के रूप में वापस आ जाता है और इस ऋण के लिए और अधिक ब्याज। एक प्रकार यह ऋण एक दुष्चक्र सा बन गया है। यही दुष्चक्र भारत की गरीबी का कारण है। इस धन निकास से भारत में रोजगार तथा आय की सम्भावनाओं पर अत्यधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। अतः भारत में इस धन निकासी के कारण गरीबी एवं बेरोजगारी बढ़ती जा रही थी।

ब्रिटिश काल में भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन– भारत में अंग्रेजी शासन के आगमन से पूर्व शहरों में दस्तकारी का कार्य बहुत कुशलता तथा कलात्मकता से होता था। कलवर्टन लिखते हैं, ''प्राचीन काल में जब रोम के निजी एवं सार्वजनिक भवनों में भारतीय कपड़ों, दीवार–दरी तामचीनी, मोजेक, हीरे जवाहरात आदि का उपयोग होता था उस वक्त से लेकर औद्योगिक क्रांन्ति के प्रारम्भ तक आकर्षक तथा सुन्दर वस्तुओं के लिए सारा संसार भारत का मोहताज रहा है।'' सन 1800 ई. तक भारतीय उद्योग–धन्धे

संसार में सबसे अधिक विकसित अवस्था में थे क्योंकि अभी उद्योग केवल कुटीर उद्योग ही थे और भारतीय कपड़ा अपनी सुन्दरता व महीनता के लिए विश्व प्रसिद्ध था। ढाका की मलमल की पूरे विश्व में मांग थी। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में धातुकर्म, प्रस्तर शिल्प, नील, कागज, रंगाई, शीशे की चीजों का निर्माण, मनका, बेश कीमती पत्थरों पर की गई कारीगरी, सोने के तारों तथा कसीदाकारी जैसे अनेक कार्य विकास के चरम पर थे। लेकिन सन 1800 ई0 के बाद देश में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विदेशों के आधुनिक कारखानों में उत्पादन अत्यधिक बढ़ने लगा। इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रांति के कारण भारत में इंग्लैण्ड के कारखानों में बने माल की बाढ़ आ गई जिससे न केवल देशी कुटीर उद्योगों का पतन होने लगा बल्कि उनके देशी व विदेशी बाजार में गिरावट आ गई। इस घटना को इतिहास में अनौद्योगीकरण कहा जाता है जिससे भारतीय परम्परागत उद्योगों का पतन हो गया तथा भारतीय अर्थव्यवस्था पर इंग्लैण्ड का नियन्त्रण सुदृढ़ होता गया।

ब्रिटिश काल से पूर्व भारत में विभिन्न प्रकार के उद्योग—धन्धे फल फूल रहे थे जैसे ग्रामीण उद्योग, कृषि आधारित उद्योग, कलात्मक ग्रामीण उद्योग एवं नगरीय कुटीर उद्योग आदि। ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक मात्र उद्देश्य भारत से कच्चे माल का इंग्लैण्ड में निर्यात करना तथा ब्रिटेन के कारखानों में निर्मित माल को भारतीय बाजारों में बेचकर अधिकाधिक लाभ कमाना था। कम्पनी जब यहाँ आई तो भारत में निर्मित कपड़ा व अन्य माल बेचने से इंग्लैण्ड में निर्मित कपड़े की ब्रिकी अत्यधिक कम हो गयी। परिणामस्वरूप इंग्लैण्ड की कम्पनियों ने भारत से कपड़ा मंगाने का विरोध किया। अतः सन 1700 ई0 में कानून बनाया गया जिसके द्वारा इंग्लैण्ड में विदेशों से आने वाले कपड़े पर रोक लगाई गई जिससे भारतीय निर्यात पर गहरा प्रभाव पड़ा। व्यापार संतुलन इंग्लैण्ड के पक्ष में होता चला गया। भारतीय उद्योगों को इससे हानि हुई। ब्रिटिश सरकार ने विभिन्न भेदभावपूर्ण कानूनों एवं नीतियों से ऐसी व्यवस्था बना ली जिससे भारतीय कच्चा माल सस्ती दरों पर इंग्लैण्ड को निर्यात किया जाये तथा वहाँ के कारखानों में निर्मित माल आयात कर भारतीय बाजारों में महंगी दरों पर बेचा जाये। इसका एक उदाहरण है कपास, बुनकर अपने कपड़े के लिए कपास सूरत और बम्बई से लेते थे। इस कच्चे माल पर अपना नियंत्रण रखने के लिए कम्पनी के कर्मचारियों ने एक कम्पनी खोल ली और सूरत से 25 लाख रूपये में सारी कपास खरीद ली। इसके परिणामस्वरूप कपास की कीमत 16–18 रूपये प्रति मन से बढ़कर 20–30 रूपये प्रति मन हो गई। यह बुनकरों के लिए अत्यन्त घातक सिद्ध हुआ जिससे एक ओर तो वे अपने द्वारा तैयार माल को अपनी इच्छा से बेचने के लिए स्वतंत्र नहीं थे, वहीं दूसरी ओर कच्चे माल के ऊँचे दामों ने उनकी कमर तोड़ दी। इस शोषणकारी प्रक्रिया ने भारतीय परम्परागत उद्योगों को समाप्त कर दिया तथा बेरोजगार भारतीय जनता को निर्धनता की तरफ धकेल दिया तथा इस अनौद्योगीकरण के कारण भारतीय जनता की कृषि पर निर्भरता निरन्तर बढ़ती चली गयी।

ब्रिटिश काल में कृषि पर प्रभाव— ब्रिटिश काल में कृषि का इतिहास कृषकों की निरन्तर निर्धनता का इतिहास है। ये कृषकों के कर्ज के दुष्चक्र का इतिहास है। ब्रिटिश काल में भारतीय परम्परागत उद्योग धन्धों के पतन के कारण कृषिगत भूमि पर जनसंख्या का भार बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप खेतों का आकार छोटा होता गया तथा कृषि एक लाभप्रद रोजगार नहीं रही। ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा नियमित राजस्व की वसूली के लिए नयी भू–राजस्व व्यवस्थाओं को लागू किया गया। सन 1765 ई0 में कम्पनी को बंगाल, बिहार व उड़ीसा की दीवानी मिलते ही भू–राजस्व वसूलने के लिए स्वयं के लाभ के लिए एक नया ढाँचा खड़ा करना था। साम्राज्य विस्तार के लिए अधिक धन की आवश्यकता थी। इसलिए सर्वप्रथम बंगाल में लगान में वृद्धि की गई। इसे भी नाकाफी मानते हुए भारतीय कृषि को पूँजीवादी व्यवस्था के अनुरूप ढालने के

लिए भारतीय परम्परागत ढाँचों से अलग कुछ नए उपाय खोजे गये।

बंगाल के प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स के समय ही लगान वसूल करने से सम्बन्धित कई प्रश्न उत्पन्न हुए जैसे –

1. भारत में भूस्वामी किसे माना जाए ?

2. राजस्व चुकाने के लिए उत्तरदायी कौन हो ?

3. उपज में सरकार का भाग कितना हो ?

वारेन हेस्टिंग्स का मानना था कि भूमि राजा की है तथा लगान इकट्ठा करने वाले मात्र कम्पनी के एजेण्ट हैं अर्थात् कोई अधिक बोली लगाने वाला भी लगान वसूलने का अधिकारी हो सकता था। इस व्यवस्था ने 'अनुपस्थित जमींदारों' को जन्म दिया। इससे पुराने जमींदार परिवार नष्ट हो गए तथा उनके और खेती करने वालों के परम्परागत भावनात्मक सम्बन्ध समाप्त हो गए। परिणामस्वरूप भारतीय कृषि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

वारेन हेस्टिंग्स के बाद ब्रिटिश शासन काल में अपने राजस्व की बढ़ोतरी के लिए मुख्य रूप से तीन नयी भू–राजस्व व्यवस्थाओं को लागू किया गया–

1. स्थायी बंदोबस्त अथवा जमींदारी व्यवस्था– इस भू–राजस्व व्यवस्था को लॉर्ड कॉर्नवॉलिस ने लागू किया। यह भू–राजस्व व्यवस्था बंगाल, बिहार, उड़ीसा, बनारस खण्ड तथा उत्तरी कर्नाटक में लागू की गयी। स्थायी बंदोबस्त में जमींदार को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया। वह भूमि को बेच सकता था अथवा दान दे सकता था तथा राज्य को भूमि कर देने के लिए केवल जमींदार ही उत्तरदायी था। उसके कर न देने पर उसकी भूमि को जब्त कर लिया जाता था। इस व्यवस्था में भू–राजस्व को स्थायी रूप से निश्चित कर दिया गया था जिसकी वसूली कम्पनी जमींदार से करती थी। इस कारण इस व्यवस्था को स्थायी जमींदारी व्यवस्था भी कहा जाता है। यह व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 19 प्रतिशत भाग पर लागू थी। इस व्यवस्था में जमींदार का हिस्सा भू–राजस्व का 11 प्रतिशत तथा कम्पनी का 89 प्रतिशत था। प्रारम्भिक वर्षों में इतनी ऊँची राजस्व की मांग के कारण 1/3 से अधिक जमींदार बेदखल हो गए किन्तु कालान्तर में अनेक तत्वों के कारण स्थितियाँ जमींदारों के पक्ष में हो गईं। इस व्यवस्था का सबसे नकारात्मक पक्ष यह था कि सरकार की मांग स्थिर हो गयी जबकि जमींदार किसानों से अधिक भू–राजस्व वसूलता था और यदि भू–राजस्व का भुगतान किसान/काश्तकार नहीं करता था तो उसे जमीन से बेदखल कर दिया जाता था।

2. महलवाडी पद्धति– यह भू–राजस्व व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 30 प्रतिशत भू–भाग पर लागू थी। इस भू–राजस्व व्यवस्था में भूमि कर की इकाई कृषक के खेत को नहीं मानकर ग्राम अथवा महल को माना गया था। इस व्यवस्था में भूमि सामूहिक रूप से समस्त ग्राम सभा की होती थी जिसे भागीदारों का समूह कहा जाता था। ये लोग सामूहिक रूप से भू–राजस्व देने के लिए उत्तरदायी होते थे। यदि कोई व्यक्ति भूमि छोड़ देता था तो ग्राम सभा इस भूमि को सम्भाल लेती थी। यह भू–राजस्व व्यवस्था अवध (यू.पी.), मध्य प्रांत तथा पंजाब में (कुछ परिवर्तन के साथ) लागू की गई थी।

इस भू–राजस्व व्यवस्था में कर की वास्तविक दर के स्थान पर संभावित दर पर कर लिया जाने लगा जिसके कारण कृषकों की स्थिति और अधिक खराब हो गई और इस कारण इस क्षेत्र के लोगों ने सन 1857 ई0 के विद्रोह में भाग लिया।

3. रैयत वाड़ी भू–राजस्व व्यवस्था– यह भू–राजस्व व्यवस्था ब्रिटिश भारत के 51 प्रतिशत भाग पर लागू थी। इस भू–राजस्व व्यवस्था में रैयत (किसान) को भूमि का स्वामी स्वीकार किया गया। किसान राज्य

सरकार को भूमि कर देने के लिए उत्तरदायी था वह अपनी भूमि को बेचने, गिरवी रखने का अधिकारी था। वह अपनी भूमि से उस समय तक वंचित नहीं किया जा सकता था जब तक वह समय पर भूमि कर देता रहे।

इस व्यवस्था को मद्रास प्रेजीडेन्सी के बारामहल जिले में सन 1792 ई0 में कैप्टिन रीड ने टॉमस मुनरो की सहायता से लागू किया गया। इस व्यवस्था को बम्बई में ई. गोल्डस्मिथ, कैप्टिन डेविडसन तथा कैप्टिन विगनेट के भू सर्वेक्षण के बाद लागू किया गया था। रैयत वाड़ी व्यवस्था में अत्यधिक भूमि कर एवं उसकी अनिश्चितता मुख्य समस्या थी जिसके कारण किसान दिनों–दिन साहूकारों के चंगुल में फँसते चले गये। इसी के परिणामस्वरूप सन 1875 ई. में दक्कन में कृषक विद्रोह हुआ।

इन भू–राजस्व व्यवस्थाओं के कारण निम्न दुष्परिणाम सामने आए :–

1. कृषि का व्यावसायीकरण– 1900 ई0 के बाद भारतीय कृषि में एक और परिवर्तन हुआ, वह था कृषि का व्यावसायीकरण। इस समय तक कृषि एक जीवन यापन का माध्यम थी, न कि व्यापारिक उद्देश्य। लेकिन अब कृषि पर व्यापारिक प्रभाव आने लगा। कुछ विशेष फसलों का उत्पादन ग्रामीण एवं आमजन के उपभोग के लिए नहीं अपितु राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय मण्डियों के लिए होने लगा। चाय, रबड़, कपास, पटसन, मूँगफली, गन्ना, तम्बाकू जैसी व्यावसायिक फसलें अब अनाज के स्थान पर अधिक लाभदायक सिद्ध होने लगी। व्यावसायिक कृषि में भूमिकर अत्यधिक होने के कारण कृषक प्रायः भूमिकर नहीं दे पाता था और उसे साहूकारों का सहारा लेना पड़ता था। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अत्यधिक ब्याज देना पड़ता था। अतः कृषि का व्यावसायीकरण भारतीय किसान के लिए एक ऋण का दुष्चक्र साबित हुआ। इस व्यवस्था से अनेक बिचौलिये पनप गये जिससे किसान और अधिक गरीब होता चला गया।

2. निर्धनता में वृद्धि – भूमि लगान में लगातार वृद्धि और फसल की सही कीमत नहीं मिलने से भारतीय किसान की आर्थिक स्थिति ब्रिटिश काल में खराब होती चली गयी। साथ ही ब्रिटिश काल में अकाल, बाढ़, भूकम्प तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसानों की स्थिति और बदतर होती चली गयी।

3. ग्रामीण ऋण बोझ में वृद्धि – अधिकांश कृषक अत्यधिक लगान के कारण महाजनों एवं साहूकारों से ऋण लेते थे तथा इसी वजह से ऋण के जाल में फँसते चले जाते थे। ब्रिटिश काल में भारतीय कृषकों के लिए साहूकारों का ऋण एक बहुत बड़ी समस्या बन गया था। मैकलेगन ने इस कर्ज को लगभग 300 करोड़ रूपये अनुमानित किया था।

4. तीनों भू–राजस्व व्यवस्थाओं में किसान को वास्तविक रूप से भूमि का मालिक नहीं माना गया। रैयतवाड़ी व्यवस्था में यद्यपि उसे भूमि का मालिक माना गया था लेकिन भू लगान अत्यधिक होने के कारण उसकी भूमि गैर कृषकों के पास स्थानान्तरित होने लगी इसके कारण से ब्रिटिश काल में भूमि का मालिकाना हक कृषक से गैर कृषकों को स्थानान्तरित हो गया।

5. भूमि के लगान को स्थिर मूल्यों पर लागू कर यह तय कर दिया गया कि चाहे पैदावार हो या न हो जो भूमि लगान तय कर दिया गया था वह उसे देना ही होगा। भारत में जहाँ अधिकतर कृषि क्षेत्र मानसून पर आधारित है, जिससे कृषि उत्पादन निश्चित नहीं होता था। अतः लगान की अनिवार्यता ने भारतीय कृषकों को निर्धनता व कर्ज के जाल में फँसा दिया।

6. ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों के परिणामस्वरूप अकाल का प्रकोप बढ़ गया था। सन 1765 से सन 1855 तक भारत में कुल बारह अकाल पड़े। दुर्भाग्यवश खाद्यान्न का अभाव प्राकृतिक आपदा मात्र नहीं था बल्कि ब्रिटिश शासकों की दोषपूर्ण वितरण व विपणन नीतियों का दुष्परिणाम था। रजनीपाम दत्त ने यहाँ तक प्रमाण दिये हैं कि अकाल के दिनों में भी खाद्यान्न का निर्यात किया जाता रहा था। बार–बार

के अकालों ने मानव मृत्यु दर में तो वृद्धि की ही साथ ही पशु सम्पति को भी चारे की कमी ने काफी नुकसान पहुँचाया। इस प्रकार मानव संसाधनों तथा पशु सम्पत्ति पर अकाल का बहुत विपरीत प्रभाव पड़ा।

ब्रिटिश काल में हस्तशिल्प कलाओं का पतन– 19वीं सदी के दौरान भारतीय हस्तकला एवं शिल्प उद्योग का बहुत तेजी से पतन हुआ। इसका प्रमुख कारण भारत में मुक्त ब्रिटिश व्यापार का प्रारम्भ होना था। इसके कारण ब्रिटेन से सस्ती औद्योगिक वस्तुओं का भारत में आयात बढ़ गया। इसके साथ ही भारत में निर्मित वस्तुओं पर ब्रिटेन में भारी आयात शुल्क लगाया गया जिससे भारतीय वस्तुएँ इंग्लैण्ड में मंहगी हो गयीं तथा कारखानों में निर्मित वस्तुओं से प्रतिस्पर्द्धा में नहीं टिक पाईं। भारत में हस्तशिल्पकारों का संरक्षण देशी राजाओं, जमींदारों तथा सांमतों द्वारा किया जा रहा था क्योंकि यही वर्ग इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का उपभोक्ता था। जैसे–जैसे ब्रिटिश शासन का भारत में विस्तार हुआ, वैसे–वैसे यह वर्ग समाप्त होता चला गया अतः हस्तशिल्पकारों को संरक्षण तथा उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं का बाजार समाप्त हो गया। इस स्थिति में शिल्पियों, कारीगरों, बुनकरों तथा अन्य हस्तशिल्प में संलग्न लोगों के सामने खेती करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं रहा। भारत में कृषि तथा उद्योग का जो संतुलन था वह नष्ट हो गया। सन 1892 ई0 से सन 1921 ई0 तक कृषि पर निर्भर होने वाली जनसंख्या 61 प्रतिशत से बढ़कर 73 प्रतिशत हो गयी। इस प्रकार भारतीय हस्तशिल्पी वर्ग ने आधुनिक सर्वहारा वर्ग का रूप धारण कर लिया तथा इससे भूमि मजदूर वर्ग, औद्योगिक श्रमिक, किरायेदार तथा कृषक वर्ग में एकाकीपन की भावना पैदा हो गयी। वे सब एक जैसी समस्याओं से पीड़ित हो गये। ऐसी स्थिति ब्रिटिश काल से पूर्व कभी भी नहीं थी।

19वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारत में कुछ आधुनिक उद्योगों का विकास होने लगा था परन्तु रोजगार या उत्पादन की दृष्टि से स्थिति विकसित देशों के मुकाबले नगण्य ही थी। भारतीय औद्योगिक विकास 19वीं सदी के दौरान मूलतः कपास, जूट उद्योग एवं चाय बागानों तक सीमित था। बाद में सन 1930 ई0 के दौरान भी यह चीनी, सीमेन्ट तथा कागज उद्योग तक पहुँच पाया। सन 1907 ई0 में जमशेद जी टाटा ने लोहा एवं इस्पात उद्योग का शुभारम्भ किया।

इस प्रकार औपनिवेशिक काल में आम जनता के लिए कल्याणकारी कार्यों को नजरअंदाज कर ब्रिटिश सरकार ने अपने फायदे के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का भरपूर दोहन किया। उपनिवेशवाद ने अपने लाभ के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ दिया। यह सम्बन्ध मूल रूप से असमानता के सिद्धान्त पर आधारित था। 18वीं सदी के अन्तिम दशकों में ब्रिटिश सरकार ने अनेक भेदभावपूर्ण नीतियाँ अपनाकर भारतीय अर्थव्यवस्था को पूर्ण रूप से ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के अधीन कर दिया। इससे भारत की स्थिति यह बन गयी कि वह कच्चे माल का निर्यातक तथा निर्मित माल का आयातक देश बन गया था।

200 वर्षों के औपनिवेशिक शासन के पश्चात जब भारत आजाद हुआ तब तत्कालीन भारतीय राजनेताओं, प्रशासकों एवं नीति निर्माताओं के लिए इन चुनौतियों से निजात पाना अत्यन्त चुनौतीपूर्ण रहा होगा। यह कल्पना की जा सकती है कि इन समस्त चुनौतियों के बीच चुनी गई लोकतांत्रिक सरकारों ने लगभग हर क्षेत्र में आधारभूत संरचना के विकास के लिए ऐसी योजनाएँ तैयार की जिससे वर्तमान विकसित भारत का निर्माण संभव हो सका।

अभ्यासार्थ प्रश्न

1. धन निष्कासन का सिद्धांत किसने दिया ?

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) बालगंगाधर तिलक

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

2. किस भू–राजस्व व्यवस्था में भूमि का मालिक जमींदार को माना गया है ?

   (अ) स्थायी बंदोबस्त (ब) महलवाड़ी पद्धति

   (स) रैयत वाड़ी भू–राजस्वव्यवस्था (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. रैयत वाड़ी भू–राजस्व व्यवस्था किसके द्वारा लागू की गई ?

   (अ) कॉर्नवालिस एवं जॉन शोर (ब) रीड एवं मूनरो

   (स) मार्टिन बर्ड (द) केनिंग

4. पावर्टी एण्ड अन ब्रिटिश रूल इन इण्डिया' नामक पुस्तक किसके द्वारा लिखी गई ?

   (अ) दादाभाई नौरोजी (ब) बालगंगाधर तिलक

   (स) आर. सी. दत्त (द) गोपाल कृष्ण गोखले

5. धन निष्कासन से आप क्या समझते है ?

6. भू–राजस्व व्यवस्थाओं का भारत की कृषि एवं अर्थव्यवस्था पर क्या असर पड़ा ?